पीठ:- आर. एन. मित्तल न्यायाधिपति

विलियम जैक्स एंड कंपनी (इंडिया) लिमिटेड,- याचिकाकर्ता

बनाम

द सरस्वती इंडस्ट्रियल सिंडिकेट लिमिटेड;, यमुनानगर,- प्रत्यर्थी

कंपनी आवेदन संख्या 54 of 1983

कंपनी याचिका संख्या 4 of 1983 में

20 अक्टूबर, 1983

माध्यस्थम् अधिनियम (X of 1940) धारा 34 — कम्पनी अधिनियम (I of 1956) — धारा 433, 434 और 439 — ऋणदाता और कंपनी के मध्य हुए इक़रारनामे में माध्यस्थम् खंड — ऋणदाता द्वारा परिसमापन याचिका दाखिल की गई — कंपनी को नोटिस जारी करने का आदेश दिया गया — कंपनी की ओर से अधिवक्ता पेश हुआ और लिखित जवाब प्रस्तुत करने के लिए समय की मांग की गई — कंपनी द्वारा कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए धारा 34 के तहत आवेदन — लिखित जवाब प्रस्तुत करने के लिए समय मांगने की अधिवक्ता की कार्रवाई — क्या कार्यवाही में एक कदम के बराबर है — धारा 34 के तहत आवेदन जिसमें विवाद का भौतिक विवरण नहीं है — ऐसा आवेदन — क्या ख़ारिज किए जाने योग्य है — धारा 34 के तहत आवेदन — क्या समापन याचिका में पोषणीय है।

अभिनिर्धारित किया गया कि लिखित जवाब प्रस्तुत करने के लिए समय मांगने की अधिवक्ता की कार्रवाई माध्यस्थम अधिनियम की धारा 34 के अर्थ के भीतर कार्यवाही में कदम उठाने के बराबर है।

(जिम्मन 5)

अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम की धारा 34 के तहत मामले को मध्यस्थ को निर्दिष्ट करने के लिए विवाद का अस्तित्व पूर्ववर्ती शर्त है। इसलिए, उक्त धारा के तहत एक आवेदन में प्रतिवादी को

न्यायालय के समक्ष सभी सामग्री लानी चाहिए, ताकि वह एक निष्कर्ष दर्ज करने में सक्षम हो सके कि विवाद के विषय को मध्यस्थ को संदर्भित करने हेतु सहमति की गई थी। यदि ऐसी सामग्री प्रदान नहीं की जाती है, तो आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया जाएगा।

(जिम्मन 10)

अभिनिर्धारित किया गया कि कंपनी को बंद करने की अधिकारिता एक विशेष अधिकारिता है जो उच्च न्यायालयों को प्रदान की गई है। इस तरह के आदेश को पारित करने का उद्देश्य यह है कि कंपनी की परिसंपत्तियों की वसूली की जाए और ऋणों का भुगतान अविलम्ब रूप से किया जाए। कंपनी के विरुद्ध इस तरह के आदेश के पारित होने के गंभीर परिणाम हैं और इसलिए, अधिकार क्षेत्र उच्च न्यायालयों को दिया गया है। कंपनी अधिनियम की धारा 433 में उल्लिखित आधारों पर समापन का आदेश पारित किया जा सकता है। यह प्रतीत नहीं होता है कि विधानमंडल का आशय यह था कि ऐसी शक्ति मध्यस्थ को प्रदान की जा सकती है। समापन की याचिका को कंपनी से ऋण की राशि की वसूली के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसलिए, धारा 34 के तहत आवेदन एक समापन याचिका में पोषणीय नहीं है।

(जिम्मन 12)

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 34 के अधीन दायर इस आवेदन में यह प्रार्थना कि गई है कि यह माननीय न्यायालय कंपनी याचिका संख्या 4 of 1983 की कार्यवाही को स्थगित कर दे और ऐसे अन्य आदेश पारित करे जो परिस्थितियों में उचित और न्यायसंगत हों।

उपस्थित:-

आवेदक की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री भागीरथ दास और अधिवक्ता श्री रमेश कुमार।

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता श्री एन.के. खेतान, अधिवक्ता श्री आर.एन. नरूला, अधिवक्ता श्री एम.एस. सूद और अधिवक्ता श्री पी.एस. सैन।

निर्णय

राजेंद्र नाथ मित्तल, न्यायाधिपति

(1) संक्षेप में, तथ्य यह हैं कि मेसर्स विलियम जैक्स एंड कंपनी (इंडिया) लिमिटेड (इसके बाद कंपनी के रूप में संदर्भित) ने कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 433 और 434 के साथ पठित धारा 439 के तहत सरस्वती औद्योगिक सिंडिकेट लिमिटेड (इसके बाद सिंडिकेट के रूप में संदर्भित) के विरुद्ध एक याचिका दायर की थी, जिसमें यह अभिकथित किया गया था कि उसके द्वारा 5 लाख रुपए और उससे विषम राशि देय थी जिसे वह यह स्वीकार करने के बावजूद भुगतान करने में विफल रहा कि उपर्युक्त राशि उसके द्वारा देय थी। याचिका में नोटिस इस न्यायालय द्वारा 13 जनवरी, 1983 को 3 मार्च, 1983 के लिए जारी करने का आदेश दिया गया था। यह नोटिस कंपनी की ओर से श्री आर.एन. नरूला, अधिवक्ता द्वारा 18 जनवरी, 1983 को सिंडिकेट को भेजा गया था, जो उसे एक सप्ताह के भीतर प्राप्त हो गया होगा। 3 मार्च, 1983 को, श्री ए.के. जयस्वाल, अधिवक्ता, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित हुए और लिखित जवाब प्रस्तुत करने हेतु समय का अनुरोध किया। उनके अनुरोध पर मामले को 7 अप्रैल, 1983 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। सुनवाई की तारीख से दो दिन पूर्व यानी 5 अप्रैल, 1983 को सिंडीकेट की ओर से मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (जिसे इसके पश्चात् अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 34 के अधीन एक आवेदन (सी.ए. संख्या 54 of 1983) इस आधार पर कार्यवाहियों पर रोक लगाने के लिए प्रस्तुत किया गया था कि पक्षों के बीच इक़रारनामे में मध्यस्थता खंड निहित है। आवेदन को कंपनी की ओर से चुनौती दी गई है।

(2) श्री भागीरथ दास का पहला तर्क यह है कि पक्षों के बीच इक़रारनामे में एक मध्यस्थता खंड है, जिसके अनुसार सभी विवादों को पक्षों के पारस्परिक समझौते द्वारा नियुक्त किए जाने वाले मध्यस्थ को संदर्भित किया जाएगा और पक्षकारों के सहमत होने में विफल रहने की स्थिति में संदर्भ फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री, दिल्ली के एक नामित व्यक्ति के लिए उस पक्षकार के

विकल्प पर होगा, जो उसे पहले आवेदन करेगा। वह प्रस्तुत करते हैं कि इसलिए, अधिनियम की धारा 34 के तहत कार्यवाही पर रोक लगाई जा सकती है।

(3) दूसरी ओर, श्री खेतान ने तर्क दिया है कि सिंडिकेट द्वारा कार्यवाही में भाग लिया गया है क्योंकि उसकी ओर से एक लिखित जवाब दायर करने का अनुरोध किया गया था। इन परिस्थितियों में, वह प्रस्तुत करते हैं कि कार्यवाही पर रोक नहीं लगाई जा सकती है।

(4) मैंने विद्वान अधिवक्ता के तर्कों पर विधिवत विचार किया है। यह विवादित नहीं है कि याचिका की तामील को सिंडिकेट पर जनवरी, 1983 के दूसरे सप्ताह में लागू करने का आदेश दिया गया था। यह भी विवादित नहीं है कि नोटिस जारी करने की तारीख 18 जनवरी, 1983 से एक सप्ताह के भीतर सिंडिकेट को नोटिस दिया गया होगा। श्री ए.के. जयस्वाल द्वारा अनुरोध किया गया था कि लिखित जवाब प्रस्तुत करने हेतु मामले को 3 मार्च, 1983 के लिए स्थगित कर दिया जाए, यानी कि सिंडिकेट द्वारा नोटिस प्राप्त करने के एक महीने से अधिक समय के बाद। उस स्थिति में, निष्कर्ष यह है कि सिंडिकेट याचिका की सामग्री को जानता था और वह गुण-दोष के आधार पर इसका बचाव करना चाहता था। मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 मुख्य रूप से उपबंध करती है कि जहां माध्यस्थम इक़रारनामे का कोई पक्ष निर्दिष्ट किए जाने के लिए सहमत किसी मामले के संबंध में कोई कानूनी कार्यवाही आरम्भ करता है, वहां ऐसी कानूनी कार्यवाही का कोई भी पक्ष किसी भी समय लिखित जवाब देने या कार्यवाही में कोई अन्य कदम उठाने से पहले न्यायिक प्राधिकरण को कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए आवेदन कर सकता है।

(5) निर्धारण के लिए जो प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या श्री जयस्वाल का कथन कार्यवाही में एक कदम उठाने के बराबर है। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम मैसर्स जानकी सरन कैलाश चंद्र और अन्य[1] के मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष इसी प्रकार का एक प्रश्न उठा। उस मामले में, उत्तर

[1] AIR 1973 S.C. 2071

प्रदेश राज्य के विरुद्ध नुकसान के रूप में कुछ राशि की वसूली के लिए एक मुकदमा दायर किया गया था। मामले के सम्मन जिला सरकार के अधिवक्ता को दिए गए थे जिन्होंने न्यायालय में उपस्थिति पर्ची दायर की और लिखित जवाब प्रस्तुत करने के उद्देश्य से एक महीने के समय के लिए अनुरोध करते हुए एक आवेदन किया। निवेदन स्वीकार किया गया। आगामी तारीख से पूर्व, उन्होंने अधिनियम की धारा 34 के तहत एक आवेदन दायर किया जिसमें यह अभिकथित किया गया था कि वाद के पक्षों के बीच हुए इक़रारनामे में एक मध्यस्थता खंड है और इसलिए वाद पर रोक लगाई जानी चाहिए। विचरण न्यायालय ने आवेदन को स्वीकार कर लिया और वाद पर रोक लगा दी। अपील पर, उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि लिखित जवाब प्रस्तुत करने के लिए समय के लिए आवेदन करने में सरकारी अधिवक्ता की कार्रवाई अधिनियम की धारा 34 के अर्थ के भीतर कार्यवाही में कदम उठाने के समान है। नतीजतन, अपील को स्वीकार कर लिया गया और धारा 34 के तहत आवेदन को खारिज कर दिया गया। राज्य ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की। दुआ, न्यायाधिपति ने विभिन्न मामलों पर विचार करने के बाद न्यायालय की ओर से बोलते हुए कहा कि उच्च न्यायालय के विवादित निर्णय में कोई गंभीर दुर्बलता नहीं है। उस मामले में जिला सरकार के अधिवक्ता को सरकार के लिए और उसकी ओर से उपस्थित होने और कार्य करने और उसकी ओर से आवेदन करने का अधिकार दिया गया था। यदि अधिवक्ता पूर्ण निर्देश प्राप्त करने के उद्देश्य से समय चाहता था, तो वह विशेष रूप से इसके लिए पूछ सकता था, क्योंकि वह कानूनी स्थिति के बारे में अनभिज्ञ एक आम आदमी नहीं था, अपितु एक पेशेवर अधिवक्ता था जिसे सरकार द्वारा सरकार की ओर से एक मान्यता प्राप्त अभिकर्ता के रूप में कार्य करने और अभिवचन करने के उद्देश्य से रखा गया था। हालाँकि, उन्होंने इसके बजाय विशेष रूप से लिखित जवाब प्रस्तुत करने के लिए समय मांगने का विकल्प चुना और यह कार्य उन्होंने राज्य सरकार की ओर से करने का आशय किया, जिसे करने का उन्हें पूरी तरह से अधिकार था। राज्य ने उनकी उपस्थिति और लिखित जवाब प्रस्तुत करने के उद्देश्य से मामले को एक महीने के लिए स्थगित करने के उनके सफल अनुरोध का लाभ उठाया। उन परिस्थितियों में, राज्य सरकार के लिए यह दलील देना मुश्किल था कि जिला सरकारी वकील उस उद्देश्य के लिए उसकी ओर से स्थगन की मांग करने के

लिए अधिकृत नहीं था। अगर वह आगे की चर्चाओं के लिए समय चाहते, तो वह इसके लिए विशेष रूप से प्रार्थना कर सकते थे और उन्हें करना चाहिए था। यह भी कहा गया कि उस स्थगन का लाभ लेने के बाद राज्य को यह दलील देने की अनुमति देना कुछ हद तक तर्कहीन और शायद असंगत होगा कि स्थगन के लिए आवेदन निर्देशों पर नहीं किया गया था और गैर-अधिकृत था। राज्य सरकार के समक्ष ऐसा करने के अधिकार को स्वीकार करना स्पष्ट रूप से विरोधी पक्ष के लिए अन्यायपूर्ण होगा जो स्थगन पर उचित रूप से आपत्ति कर सकता था, अगर ऐसा कोई संकेत होता कि प्रार्थना एक राज्य सरकार के निर्देश पर नहीं की जा रही थी। उपर्युक्त टिप्पणियां वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से लागू होती हैं।

(6) श्री भागीरथ दास ने इस आधार पर मामले में अंतर करने का अनुरोध किया कि श्री जयस्वाल ने सिंडिकेट की ओर से कोई उपस्थिति ज्ञापन दाखिल नहीं किया और न ही उन्होंने कोई आवेदन प्रस्तुत किया जैसा कि उपर्युक्त निर्दिष्ट मामले में किया गया था। मैं कथित भेद से प्रभावित नहीं हूं। यह माना जाता है कि जब कोई अधिवक्ता उपस्थित होता है, तो वह अपने पक्षकार के निर्देश पर ऐसा करता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह उपस्थिति ज्ञापन दायर करे। यह आवश्यक नहीं है कि अनुरोध हमेशा लिखित रूप में किया जाना चाहिए। मौखिक अनुरोध उतना ही अच्छा है जितना कि लिखित अनुरोध। इस दृष्टिकोण में, भारत संघ बनाम मेसर्स हीरालाल सूद और अन्य[2], जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि लिखित जवाब प्रस्तुत करने हेतु स्थगन के लिए मौखिक अनुरोध लिखित अनुरोध के समान ही अच्छा है, में इस न्यायालय की टिप्पणियों से मैं दृढ़ हूं। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि लिखित जवाब प्रस्तुत करने के लिए स्थगन की मांग करने वाला लिखित अनुरोध कार्यवाही में एक कदम उठाने के बराबर है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि उसी प्रभाव का मौखिक अनुरोध इस तरह का कदम उठाने के बराबर नहीं होगा। उस मामले का अनुसरण मेसर्स सेगट ब्रदर्स और अन्य बनाम भारतीय खाद्य निगम और अन्य[3] में किया गया था, जिसमें इसी तरह की टिप्पणियां की गई थीं।

---

[2] 1978 P.L.R. 239
[3] 1983 C.L.J. (C & Cr.) 24

(7) श्री भागीरथ दास ने हरबंस लाल बनाम नेशनल फायर एंड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड[4] और पंजाब राज्य बनाम मोजीराम[5] के मामलों का संदर्भ दिया यह दर्शाने के लिए कि कुछ परिस्थितियों में स्थगन का अनुरोध कार्यवाही में एक कदम के बराबर नहीं है। हरबंस लाल(उपर्युक्त) के मामले में प्रतिवादी की शाखा कार्यालय में सम्मन भेजा गया था और कंपनी के मुख्य कार्यालय से निर्देश प्राप्त करना आवश्यक था। नतीजतन, एक मौखिक अनुरोध पर स्थगन दिया गया था। मोजी राम(उपर्युक्त) के मामले में सरकारी अधिवक्ता बिना किसी अधिकार के सरकार का प्रतिनिधित्व करने के लिए स्वेच्छा से पेश हुआ और इस धारणा पर लिखित जवाब प्रस्तुत करने के लिए स्थगन के लिए अनुरोध किया कि उसे नियत समय में सरकार से निर्देश प्राप्त होंगे। तत्पश्चात, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुरोध कार्यवाही में कदम के बराबर नहीं होगा। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि दोनों मामले अलग-अलग हैं।

(8) उपर्युक्त सभी तथ्यों और न्यायिक दृष्टांतों को ध्यान में रखने के बाद, मेरा विचार है कि सिंडिकेट की ओर से लिखित जवाब प्रस्तुत करने के लिए स्थगन का अनुरोध कार्यवाही में एक कदम के बराबर है। नतीजतन, वह अधिनियम की धारा 34 के लाभ का हकदार नहीं है।

(9) श्री खेतान ने कुछ और मुद्दे उठाए। यद्यपि उपर्युक्त टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए वे केवल अकादमिक हित के हैं, फिर भी मैं उनसे निपटना उचित समझता हूं।

(10) श्री खेतान का तर्क है कि आवेदन में विवाद के मूलभूत तथ्य नहीं दिए गए हैं और इसलिए इसे इस संक्षिप्त आधार पर खारिज किया जा सकता है। मुझे इस तर्क में भी सार मिलता है। अधिनियम की धारा 34 की भाषा से यह स्पष्ट है कि विवाद का अस्तित्व मामले को मध्यस्थ को भेजने के लिए एक

[4] AIR 1955 N.U.C. (Punjab) 4917
[5] AIR 1957 Punjab 223

पूर्ववर्ती शर्त है। इसलिए, प्रतिवादी को, उक्त धारा के तहत एक आवेदन में, सभी सामग्री को न्यायालय के समक्ष लाना चाहिए ताकि वह एक निष्कर्ष दर्ज करने में सक्षम हो सके कि विवाद के विषय को मध्यस्थ को संदर्भित करने हेतु सहमत की गई थी। यदि ऐसी सामग्री प्रदान नहीं की जाती है, तो आवेदन इस आधार पर खारिज किया जा सकता है। इस संबंध में दमन आनंद और अन्य बनाम हीरालाल और अन्य[6] में मेरे निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वाद में कार्यवाहियों पर रोक लगाने के लिए माध्यस्थम अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन में पक्षकारों के बीच विवाद के अस्तित्व का खुलासा किया जाना चाहिए, जो इक़रारनामे में मध्यस्थता खंड के अधीन पक्षकारों को मामले को मध्यस्थ को निर्दिष्ट करने के लिए बाध्य करेगा। इस तरह के आरोप की अनुपस्थिति में कार्यवाही पर रोक लगाने का आवेदन पोषणीय नहीं है। मैसर्स पर्ल होजरी मिल्स लुधियाना बनाम भारत संघ और अन्य[7] के मामले में भी दिल्ली उच्च न्यायालय ने ऐसा ही विचार रखा था। उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 34 के तहत एक आवेदन में, न्यायालय को यह देखना होगा कि विवाद क्या है और क्या अंतर है और फिर यह पता लगाने के लिए कि क्या यह उसके दायरे में आता है, मध्यस्थता खंड को देखना होगा। इसलिए, न्यायालय को अनिवार्य रूप से मध्यस्थता खंड के साथ-साथ विशेष विवाद या अंतर दोनों को देखना होगा जो धारा 34 के तहत आवेदन में निर्दिष्ट है। उपर्युक्त टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, धारा 34 के तहत आवेदन यह अभिनिर्धारित करते हुए ख़ारिज किया गया कि न तो विवाद या अंतर और न ही मामले को मध्यस्थता के लिए भेजे जाने का कारण स्थगन के लिए आवेदन में निर्दिष्ट किया गया था।

(11) वर्तमान मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह देखा जाएगा कि सिंडिकेट-आवेदक का आरोप यह है कि कंपनी द्वारा उस पर अधिरोपित दायित्वों का पालन न करने के कारण सिंडिकेट को नुकसान और कठिनाई का सामना करना पड़ा है। कंपनी के ऐसे दायित्वों के बारे में कोई विवरण नहीं दिया गया है जिनका पालन नहीं किया गया था। यह भी स्पष्ट नहीं किया गया है कि इससे कितना नुकसान हुआ है।

---

[6] AIR 1974 Punjab and Haryana 232
[7] AIR 1979 Delhi 64

इसलिए, मेरा विचार है कि विवाद के विवरण का अभाव है। इन परिस्थितियों में, यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि कार्यवाही में देरी करने के लिए आवेदन को दुर्भावनापूर्ण प्रस्तुत किया गया है।

(12) श्री खेतान का अंतिम निवेदन यह है कि माध्यस्थम अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन समापन याचिका में पोषणीय नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, वह सालिग राम आदि, बनाम न्यू सूरज फाइनेंसर और चिट फंड कंपनी, आदि[8] में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा करते हैं। मुझे इस तर्क में सार मिलता है। कंपनी को बंद करने की अधिकारिता एक विशेष अधिकारिता है जो उच्च न्यायालयों को प्रदान की गई है। इस तरह के आदेश को पारित करने का उद्देश्य यह है कि कंपनी की परिसंपत्तियों की वसूली की जाए और ऋणों का भुगतान अविलम्ब रूप से किया जाए। कंपनी के विरुद्ध इस तरह के आदेश के पारित होने के गंभीर परिणाम हैं और इसलिए, अधिकार क्षेत्र उच्च न्यायालयों को दिया गया है। कंपनी अधिनियम की धारा 433 में उल्लिखित आधारों पर समापन का आदेश पारित किया जा सकता है। यह प्रतीत नहीं होता है कि विधानमंडल का आशय यह था कि ऐसी शक्ति मध्यस्थ को प्रदान की जा सकती है। समापन की याचिका को कंपनी से ऋण की राशि की वसूली के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसलिए, मेरी राय है कि धारा 34 के तहत आवेदन एक समापन याचिका में पोषणीय नहीं है। उपर्युक्त दृष्टिकोण में, मुझे सालिग राम(उपर्युक्त) के मामले में बी.एस. ढिल्लों, न्यायाधिपति के निम्नलिखित अवलोकनों से सार मिलता है -

"आवेदन पूरी तरह से गलत है। कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 439 के साथ पठित धारा 433 और 434 के उपबंधों के अधीन कार्यवाहियां उस क्षेत्राधिकरिता से पूर्णतः भिन्न हैं जिसके संबंध में विचाराधीन खंड के अधीन माध्यस्थम के माध्यम में उपाय मांगा जा सकता है। यह कल्पना करना गलत है कि कंपनी अधिनियम की धारा 433, 434 और 439 के प्रावधानों के तहत समापन की कार्यवाही किसी योजना के विभिन्न प्रावधानों के तहत वसूली के रूप में है। कंपनी अधिनियम की धारा 433 के

[8] C.A. No. 8 of 1979 in CP No. 147 of 1978, decided on 12th July, 1979

प्रावधानों के तहत, विधानमंडल ने उन परिस्थितियों/आधारों को संहिताबद्ध किया जिनके आधार पर न्यायालय द्वारा किसी कंपनी को बंद करने का आदेश दिया जा सकता है। धारा 434 में यह उपबंध किया गया है कि किन परिस्थितियों में कंपनी अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ मानी जा सकती है, जबकि धारा 439 समापन के आवेदन के संबंध में उपबंध करती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि याचिकाकर्ता कंपनी अधिनियम की धारा 433 और 434 में निर्धारित पूर्ववर्ती शर्तों को पूरा करने में असमर्थ है, तो समापन के लिए याचिका खारिज की जानी चाहिए। उक्त याचिका विवादित ऋणों की वसूली की कार्यवाही या योजना की शर्तों के अधिकारों और देनदारियों से उत्पन्न होने वाले विवादों के निपटारे से संबंधित कार्यवाही नहीं हो सकती है। इसलिए, कार्यवाही पर रोक लगाने की याचिका को गलत समझा गया है।"

(13) उपर्युक्त कारणों से, मुझे आवेदन में कोई योग्यता नहीं मिलती है और मैं इसे खारिज करता हूं। मामले को लिखित जवाब के लिए 17 नवंबर, 1983 के लिए स्थगित कर दिया जाता है।

अस्वीकरण:
स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय याचिकाकर्ता के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

ऋषभ अग्रवाल, प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
रेवाड, UID No:- HR0675